परम पुरुष पूरन धनी स्वामीजी महाराज : राधास्वामी दयाल

परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी दयाल ने शहर आगरा मोहल्ला पन्नीगली के प्रतिष्ठित खत्री परिवार में विक्रम सं. १८७५, भादों बदी अष्टमी तदनुसार २५ अगस्त सन् १८१८ की रात्रि को साढ़े बारह बजे जन्म लिया। उनका नाम लाला शिवदयाल सिंह रखा गया। उनके सतसंगी उन्हें 'स्वामीजी महाराज', और हजूर महाराज उन्हें हजूर राधास्वामी साहब या केवल हजूर कहकर सम्बोधित करते थे।

शैशवकाल से उनका लालन पालन बड़ी निष्ठा के साथ धार्मिक वातावरण में हुआ। पूरे घर का वातावरण अध्यात्म और भक्ति से ओतप्रोत था। उनके माता पिता और उनके परिवार के सभी सदस्य भक्त थे और संत तुलसी साहब के पास हाथरस जाया करते थे। उनके पिता लाला दिलवाली सिंह जी साहब व्यवसाय से साहूकारी यानी लेनदेन का काम करते थे। संत तुलसी साहब के अनुयायी होने के कारण वह संत मत में विश्वास रखते थे और तुलसी साहब के ग्रन्थों के अतिरिक्त गुरू ग्रन्थ साहब का पाठ नियमित करते थे।

५ वर्ष की आयु में हजूर स्वामीजी महाराज विद्यालय भेजे गये, जहाँ हिन्दी, उर्दू, फारसी तथा गुरुमुखी का ज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात उन्होंने फारसी के अध्ययन में विशिष्टता प्राप्त की। फारसी भाषा में उन्होंने एक पुस्तक लिखने की भी मौज फरमाई, जो उच्चकोटि के विचारों से ओत प्रोत थी। यह पुस्तक उपलब्ध नहीं है। सुनने में आया है कि इसका नाम ''ला-इल्लाह'' था। चाचा जी साहब ने जीवन चरित्र स्वामीजी महाराज में पुस्तक का उल्लेख किया है लेकिन इसका कोई नाम नहीं लिखा।

स्वामीजी महाराज ने अरबी एवं संस्कृत का भी अध्ययन किया। विद्यार्थी जीवन में वह अपने सहपाठियों के प्रति उदार एवं स्नेहशील और अपने अध्यापकों के प्रति अत्यन्त सम्मान का व्यवहार करते थे। महाराज ने फारसी भाषा में ऐसी दक्षता प्राप्त कर ली थी कि उनके पास अनेक लड़के फारसी पढ़ने की गरज से आया करते थे जिनको परम पुरुष पूरन धनी स्वामीजी महाराज बिना कोई पारिश्रमिक लिये पढ़ाते थे। जिन विद्यार्थियों ने महाराज से पढ़ा वह बहुत योग्य हुए। जो कोई भी व्यक्ति किसी उद्देश्य से महाराज के पास आता था, उससे बहुत प्यार और मुहब्बत से पेश आते थे और उसके काम को पूरा करने के लिए अति दया फरमाते थे।

महाराज के पिताश्री के घर पर संत तुलसी साहब अक्सर तशरीफ लाते थे। एक दफा तुलसी साहब तशरीफ लाये तो महाराज की माता जी से उन्होंने स्वामीजी महाराज के आध्यात्मिक स्तर के बारे में भविष्यवाणी की और स्पष्ट कह दिया कि स्वामीजी महाराज को पुत्र भाव से न देखना। कोई परम संत ने तुम्हारे यहाँ अवतार लिया है। उस वक्त से उनके माताजी-पिताजी और परिवार के अन्य सभी सदस्य स्वामीजी महाराज से बड़े आदर व श्रद्धा भाव से बरतने लगे।

अपनी किशोरावस्था से ही स्वामीजी महाराज ने अनेकों साधुओं और विद्वानों के हृदय पर न केवल अपने दयालु एवं शान्त व्यक्तित्व की अमिट छाप डाली वरन ऊंचे से ऊंचे दरजे के परमार्थ का उपदेश देने लग गये थे। विशेष रूप से इस जगत की नाशमानता के बारे में इतना गहरा प्रवचन देते थे कि जो सुनता था अवाक् रह जाता था। स्वामीजी महाराज फरमाया करते थे कि जीव अपने आदि धाम से उतरकर नीचे आया है। चौरासी योनियों में भरमता फिरता है और बड़े दुख सहता है। अपने घर जाने का रास्ता बिल्कुल भूल गया है। यह भी स्पष्ट करते थे कि अपने घर जाने और ऊपर चढ़ने चलने की युक्ति केवल नरदेही में ही मिल सकती है। ऐसी नरदेही को सुफल करना चाहिए और मालिक की बन्दगी और इबादत में लगा रहना चाहिए और यह कि केवल सुरत-शब्द-योग के अभ्यास और गुरू भक्ति के माध्यम से ही जीव निकरौसी पा सकता है।

स्वामीजी महाराज का विवाह फरीदाबाद (हरियाणा) में राय इज्जतराय जी की सुपुत्री श्रीमती नारायनी देवी जी से हुआ जो एक दानशील और पतिपरायण महिला थीं। स्वामीजी महाराज का भोग वह स्वयं तैयार करती थीं। स्वामीजी महाराज के सम्पर्क में आने के बाद वह स्वामीजी महाराज से उच्चकोटि की परमार्थी समझौती लिया करती थीं। सतसंग के वक्त परमार्थी बचन बड़े ध्यान से सुना करती थीं। परमार्थ का शौक इतना बढ़ा कि उन्होंने हिन्दी पढ़ना सीखा और फिर पोथियां पढ़ने लगीं। स्वामीजी महाराज के बचनों का असर इतना गहरा हुआ कि एक दम जगत से वैराग्य आ गया और अपने कुल बेशकीमती जेवर जो कि उस समय हजारों रुपये के होंगे स्वामीजी महाराज को भेंट कर दिये ताकि उनको साध सेवा में खर्च कर दिया जाय। इसके अतिरिक्त गरीब और मोहताज महिलाओं को गुप्त दान भी दिया करती थीं और स्वामीजी महाराज के सतसंग में चाहे कितने ही साधु एकत्रित हो जाएं सबको अपने हाथ से खाना बनाकर खिलाती थीं। स्वामीजी महाराज के सब सतसंगी अपना प्रेम और आदर प्रकट करने के लिए उन्हें माता जी साहिबा या अति प्रेम विभोर होकर राधाजी महाराज कहकर पुकारते थे। राधाजी महाराज स्वामीजी महाराज की निज अंश थीं और स्वामीजी महाराज के साथ निजधाम से तशरीफ लाईं थीं। उन्होंने १८६४ ई. में चोला त्याग दिया और निज धाम को सिधारीं।

स्वामीजी महाराज के परिवार में उनसे बड़ी एक बहिन थीं जिनका नाम श्रद्धोजी था। स्वामीजी महाराज से छोटे भाई का नाम राय वृन्दावन साहब था। वह उच्चकोटि के परमार्थी थे और उन्होंने एक पन्थ वृन्दावनी जारी किया। उन्होंने दो पुस्तकें 'विहार वृन्दावन' व 'समर विहार वृन्दावन' लिखीं। उन्होंने परमार्थ में खूब खर्च किया एवं स्वामीजी महाराज की सेवा की। उन्होंने डाक विभाग में एक लिपिक के रूप में कार्य आरम्भ किया और पोस्ट मास्टर की हैसियत से जहाँ-जहाँ भी आपका स्थानान्तरण हुआ वहाँ पर आपने स्कूल और विकलांग सहायता केन्द्र खोले। आप अजमेर में ४ या ५ वर्ष पोस्ट मास्टर रहे, जहाँ एक स्कूल जारी किया जो गवर्नमेंट स्कूल के नाम से जाना जाता था और अब वह गवर्नमेंट कालेज हो गया है। स्वामीजी महाराज की मौज से बराबर उनकी तरक्की होती रही और आखिर में वह सुपरिन्टेन्डेन्ट पोस्ट आफिसेज अवध हुए जिसकी राजधानी उस समय फैजाबाद थी। स्वामीजी महाराज की उन पर विशेष दया रही।

राय वृन्दावन साहब से छोटे भाई राय प्रतापसिंह साहब सेठ थे जो चाचाजी साहब के नाम से प्रसिद्ध हुए। ऐसी मौज थी कि स्वामीजी महाराज के कोई संतान नहीं थी। चाचाजी साहब के तीन पुत्र थे। सबसे बड़े श्री सुचेत सिंह उनसे छोटे श्री सुजान सिंह और सबसे छोटे श्री सुदर्शन सिंह जी थे, जिन्हें सतसंग में 'भाई साहब' कहा जाता था।

चाचाजी साहब ने १० साल की उम्र से ही स्वामीजी महाराज की सेवा शुरू कर दी थी। स्वामीजी महाराज ने ही इनको पढ़ाया लिखाया, ब्याह शादी की। आपको पोस्ट आफिस में नौकरी मिल गई। स्वामीजी महाराज की काफी दया आपके ऊपर थी। स्वामीजी महाराज के गुप्त होने के बाद हजूर महाराज से भी अपना सम्बन्ध बनाये रखा। आपने जीवन चरित्र स्वामीजी महाराज लिखा है। सन् १९०९ ई. में ८० वर्ष की उम्र में देह त्यागकर मालिक के चरनों में बासा पाया। चाचाजी साहब के सबसे छोटे पुत्र श्री सुदर्शन सिंह जी सेठ जिनको भाईसाहब कहा जाता है बहुत ही प्रेमी थे। उन्होंने पोस्ट आफिस में नौकरी की और सुपरिन्टेन्डेन्ट पोस्ट आफिसेज के पद से सेवा निवृत्त हुए। स्वामीजी महाराज की इन्होंने बहुत सेवा की और स्वामीजी महाराज के गुप्त होने के बाद पूर्ण गुरू भाव से हजूर महाराज के साथ बरतते रहे। वह उच्चकोटि के अभ्यासी थे और राधास्वामी दयाल के खास दयापात्र। लालाजी महाराज के साथ बिरादराना भाव रहता था और दोनों साहब एक दूसरे के प्रति बहुत ताज़ीम दिखाते थे। सन् १९३६ ई. में आपने चोला छोड़ा और मालिक के चरनों में बासा पाया।

जब स्वामीजी महाराज की शिक्षा पूर्ण हुई तो उन्हें बांदा के राजकीय पदाधिकारी ने शिक्षक के रूप में कार्य करने के लिए आमंत्रित किया। स्वामीजी महाराज की नियुक्ति सीधे विद्यालय से ही कर ली गई। कुछ दिन उन्होंने काम किया परन्तु उन्हें यह कार्य नहीं भाया। इसे त्यागकर बल्लभगढ़ के राजा के यहाँ फारसी शिक्षक का कार्यभार सम्भाला। यहाँ भी कुछ दिन कार्य करने के बाद उन्होंने इसे भी त्याग दिया और अपना समस्त समय केवल परमार्थ में व्यतीत करने के लिए वह आगरा लौट आये।

घर में लेन-देन का कार्य होता था जो स्वामीजी महाराज को बिल्कुल पसंद नहीं था। अपने पिताश्री के चोला छोड़ने के बाद और छोटे भाई राय वृन्दावन साहब के डाकखाने में नौकरी कर लेने के बाद उन्होंने इस पारिवारिक व्यवसाय को सदा के लिए समाप्त कर दिया। अपने छोटे भाई राय प्रताप सिंह जी सेठ को एक दिन यह आदेश दिया कि जितने देनदार हैं उनको बुलाया जाय। ''जो रुपया वापिस करना चाहें, कर दें। जो नहीं वापिस कर सकते उनके सब दस्तावेज उन्हीं के सामने फाड़ दो'' और इस प्रकार से उनको ऋण से मुक्त कर दिया जाय।

६ वर्ष की आयु से ही रहीम करीम दाता दयाल हजूर स्वामीजी महाराज ने सुरत-शब्द-योग के अभ्यास में समय व्यतीत करना आरम्भ कर दिया। अपने मकान की छोटी कोठरी में कई-कई दिन तक बंद हो जाया करते थे और उन्हें नित्य क्रिया कर्म की आवश्यकता भी अनुभव नहीं होती थी।

स्वामीजी महाराज राधास्वामी दयाल ने स्वतः संत के रूप में अपने आपको प्रकट किया। उनका कोई गुरू नहीं था और ना ही उन्होंने किसी से उपदेश लिया। धीरे-धीरे स्वामीजी महाराज राधास्वामी दयाल का गुणगान और यश दूर-दूर तक फैल गया, और उनके घर में साधुओं, फकीरों और जिज्ञासुओं का समूह एकत्रित होने लगा। उस समय के मुख्य धर्मवेत्ताओं की चुनौतियों का जवाब अभूतपूर्व ढंग से देते थे। लोग स्वामीजी महाराज के प्रवचन सुनते थे और नतमस्तक हो जाते थे। बड़ी कुशलता से स्वयं द्वारा उद्घाटित सत्य की श्रेष्ठता के विषय में सबको संतुष्ट कर देते थे और सुरत शब्द के अभ्यास व गुरू भक्ति की महिमा दृढ़ा देते थे। बड़े ही रोचक ढंग से अपने नव उपदेशों के महत्व को समझा देते थे। अनेकों विद्वानों के हृदय पर अपने कृपालु एवं शान्त व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ देते थे, जो बाद में उनके शिष्य बन जाते थे।

सन् १८५८ ई. में मौज ऐसी हुई कि प्रेमी और प्रीतम का मिलन, स्वामी सेवक का मिलन, पिता पुत्र का मिलन, भक्त और भगवंत का मिलन यानि राधास्वामी का राधास्वामी से मिलन हुआ। इसी वर्ष राधास्वामी दयाल के अवतरित दूसरे स्वरूप हजूर महाराज का एक जिज्ञासु के रूप में स्वामीजी महाराज कुल मालिक के चरनों में आना हुआ। वह रविवार का दिन था। तारीख २१ नवम्बर सन् १८५८ ई. ठीक सुबह ग्यारह बजे, हजूर महाराज स्वामीजी महाराज के दरबार में पहुंचे। स्वामीजी महाराज उस समय अन्दरून कोठरी में सिंहासन पर विराजमान थे। गर्म कुर्ता, धोती और सफेद शाल ओढ़े हुए थे और कामदार टोपी लगाये हुए थे। छबि इतनी आकर्षक और मनमोहक थी कि लगता था कि राधास्वामी धाम की छटा पूर्णरूप से पन्नी गली की उस कोठरी में आ समाई हो। स्वामीजी महाराज ने हजूर महाराज को बिठाया और फिर बातचीत शुरू हुई और बातचीत का यह सिलसिला करीब सात घंटे चलता रहा और इसी बीच में जो अंतरी साधना उपनिषदों के साधनों के द्वारा हजूर महाराज ने अब तक की थी उसे अभ्यास के आसन पर बैठाकर दिखा दिया, और जिस साधना की प्राप्ति में बरसों लगे, उसे कुछ मिनटों में ही बड़ी सहूलियत से हजूर स्वामीजी महाराज ने पूरा कर दिया। स्वामीजी महाराज ने सब भेद प्रकट कर दिया और अन्तर का खुलासा हाल समझाया, जैसा कि हिदायतनामे में और कुछ उस अप्रकाशित चिट्ठी में, जो कि स्वामीजी महाराज ने हजूर महाराज को बाद में भेजी थी, वर्णन किया है।

हजूर महाराज ने स्वामीजी महाराज से गहरी प्रार्थना की कि सतसंग आम जीवों के लिये खोल दिया जाये। स्वामीजी महाराज मना करते रहे। हजूर महाराज के बहुत अनुरोध और प्रार्थना करने पर स्वामीजी महाराज ने फरमाया कि तुम एक फेहरिस्त (सूची) दे दो, हम उन सब का उद्धार कर देंगे, या जिसका तुम चाहोगे उद्धार हो जायेगा। परन्तु हजूर महाराज तो यह चाहते थे कि जगत का उद्धार होवे। कागज पर जगत (जीम गाफ टे) लिखकर स्वामीजी महाराज को पेश कर दिया।

हजूर महाराज की गहरी प्रार्थना पर स्वामीजी महाराज ने सतसंग आम जीवों के लिये खोल दिया। १५ फरवरी सन् १८६१ ई. बसन्त पंचमी के दिन आम सतसंग जारी फरमाया। सुबह के सतसंग में बचन फरमाये और उसमें निःसंकोच बाहर के लोग भी आकर बैठे। उसके बाद स्वामीजी महाराज की आरती उतारी गई। सब ने भेंट की और प्रसाद बंटा।

परन्तु यह बात समझनी चाहिए कि सन् १८६१ ई. में केवल आम सतसंग जारी हुआ लेकिन उस समय स्वामीजी महाराज ने राधास्वामी नाम प्रकट नहीं किया। राधास्वामी नाम १८६६ ई. में प्रकट हुआ, जबकि स्वामीजी महाराज ने हजूर महाराज को चिट्ठी लिखकर यह आदेश दिया कि वह ऐसा उपहार लाकर भेंट करें जिसको देखकर यकायक स्वामीजी

महाराज के दिल में खुशी हो जाय। स्वामीजी महाराज को किसी संसारी उपहार की आवश्यकता नहीं थी। उस समय हजूर महाराज नैनीताल में थे और गहरे अभ्यास में तल्लीन थे। राधास्वामी नाम की गाज उन्होंने सुनी और कुल मालिक राधास्वामी दयाल का रूप और स्वामीजी महाराज की एकता को पहचाना और वापस आने पर स्वामीजी के चरणों पर मत्था टेककर एक ही बात कही–

''हजूर पुरनूर राधास्वामी साहब, दाता दयाल ।''

स्वामीजी महाराज ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उपहार स्वीकार किया, दया से राधास्वामी नाम प्रकट कर दिया और सब सतसंगियों को राधास्वामी नाम का सुमिरन करने की हिदायत दी और इस प्रकार से राधास्वामी नाम का उपदेश जारी हो गया। उसके बाद ही स्वामीजी महाराज ने 'सार बचन राधास्वामी' लिखने की मौज फरमाई। इस उपहार से प्रसन्न होकर प्रेमप्रकाश, पुत्र रत्न हजूर महाराज को बख्शीश कर दिया और यह निश्चित कर दिया कि संतों के पुत्र संत हो सकते हैं।

स्वामीजी महाराज का अत्यधिक नूरानी रूप था। आंखों में से तेज बरसता था। ललाट पर प्रकाश ही प्रकाश था। एकटक उस रूप को निहारना साधारण जीवों के बस की बात नहीं थी। स्वामीजी महाराज अपने पूरे तन को शाल या दुपट्टे से ढांके रहते थे। रोम रोम से नूर ही नूर टपकता था। हजूर पुरनूर, दीन दयाल, दीनानाथ, खतापोश, सच्चे रहीम, दाता दयाल स्वामीजी महाराज फैज का दरिया बहा रहे थे। धन्य भाग थे उन जीवों के, जिन्होंने कुल मालिक राधास्वामी दयाल स्वामीजी महाराज का दर्शन किया व सतसंग किया।

स्वामीजी महाराज का सतसंग ३ या ४ घंटे सुबह, फिर २ या ३ घंटे तीसरे पहर, फिर शाम को आरम्भ होकर देर रात तक चलता था। स्वामीजी महाराज जब उपदेश दिया करते थे तो कभी-कभी पूरे अधिकारियों की सुरत को अपने बल से ऊपर चढ़ा दिया करते थे और ऊपर के लोक का अन्तरदर्शन दिया करते थे। जब तक स्वामीजी महाराज ने अपनी बानी नहीं बनाई थी, सुखमनी जी, जपजी और रैरास में से पाठ होता था और स्वामीजी महाराज उनके अर्थ फरमाया करते थे। फिर बचन फरमाने लगते थे और घंटों फरमाते रहते थे। बचन फरमाते थे तो धार तीव्र गति से उठती थी। बचनों की जो धार उमड़ती थी उसमें बिजली से भी ज्यादा गति थी। केवल हजूर महाराज का ही सामर्थ्य था कि उसको पूर्णतः ग्रहण कर सकें। हजूर महाराज पूर्ण गुरुमुख भाव में बरत रहे थे।

स्वामीजी महाराज हजूर महाराज को बेहद प्यार करते थे और उन्हें जान से भी ज्यादा प्यारा (अज़ीज़-अज़-जान) मानते थे। उन्होंने हजूर महाराज का परमार्थी नाम गुरुमुख दास रखा था और बड़े हंस कहकर पुकारते थे। स्वामीजी महाराज के सतसंग में हजूर महाराज के पहुंचने के बाद सतसंग की शोभा में चार चांद लग गये। सतसंग दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा, प्रेमीजन खिंचने लगे, प्रेम और भक्ति अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गयी। हजूर महाराज ने बीस साल तक तन, मन, धन और सुरत की अतुलनीय सेवा की जो भक्ति के सम्पूर्ण इतिहास में बेमिसाल है।

जब स्वामीजी महाराज ने सारबचन नज़्म बनाने की दया फरमाई तो सतसंग में बचन फरमाते फरमाते शब्द बोलने लगते थे। रफ्तार इतनी तेज थी कि दो दो मुंशी बराबर बैठे रहते थे, लिख नहीं पाते थे।

स्वामीजी महाराज ने राधास्वामी मत पर एक काव्य ग्रन्थ रचा है जिसे सारबचन राधास्वामी नज़्म यानी छंद बंद कहा जाता है। पूरी पुस्तक में ४२ बचन हैं और ४४४ शब्द हैं। स्वामीजी महाराज के सतसंग में फरमाये हुये बचनों के सारांश संग्रहित किये गये हैं। यह पुस्तक सारबचन राधास्वामी नसर यानी बार्तिक कही जाती है। यह दो भागों में है। पहले भाग में स्वामीजी महाराज के उपदेशों का संक्षिप्त विवरण है, जो हजूर महाराज ने लिखा है और दूसरे भाग में स्वामीजी महाराज के खुद फरमाये हुए कुछ बचन संकलित हैं। यह पुस्तक १८७० ई. में तैयार हुई और बहुत समय तक हस्त लिखित उर्दू प्रतियां सतसंगियों को मिलती रहीं। परन्तु सन् १८८४ ई. में हजूर महाराज और स्वामीजी महाराज के छोटे भाई चाचाजी साहब के संयुक्त निर्देशन में यह पुस्तक प्रथम बार छपी। इसकी भूमिका हजूर महाराज ने लिखी।

सतसंग में आरती की प्रथा भी थी। ज्योति जला के स्वामीजी महाराज की आरती उतारी जाती थी जैसी कि पुरानी सनातन विधि है। जब सारबचन लिखी जाने लगी तो दया करके हजूर पुरनूर स्वामीजी महाराज राधास्वामी दयाल ने

सतसंगियों की भी आरतियां बनाईं। प्रत्येक सतसंगी जिसकी आरती बनती थी वह खड़ा होकर ज्योति फेरता जाता था और स्वामीजी महाराज को एकटक निहारता जाता था। उसकी आरती होने के बाद चरनों में मत्था टेकता था और भेंट करता था। स्वामीजी महाराज दीन दयाल जब हजूर महाराज से आरती करवाते थे तो एक दो बार ज्योति फिरवाकर उनको बिठा देते थे और हजूर महाराज बैठे-बैठे स्वामीजी महाराज की आरती करते थे। इस आरती को गूंगी आरती कहा जाता है।

स्वामीजी महाराज के सतसंगियों और प्रेमियों का वही हाल था जैसे लोहा चुम्बक की तरफ आकर्षित रहता है। स्वामीजी महाराज की विशेष दया पात्र सतसंगिनों में खिल्लो जी, शिब्बो जी, बुक्की जी और बिश्नो जी थी। यह सब उच्चकोटि की अभ्यासिनें थीं और इन पर स्वामीजी महाराज की बहुत दया थी। इन सबने पर्दा त्याग दिया था और खुलेआम स्वामीजी महाराज का सतसंग करती थीं और बिरादरी की कतई चिन्ता नहीं करती थीं।

स्वामीजी महाराज ने पिछले संतों की युक्ति में परिवर्तन करके सुरत-शब्द-योग की सहज युक्ति जारी फरमाई जिसे बच्चे, लड़के, स्त्री, पुरुष आसानी से कर सकते हैं। वैराग के स्थान पर अनुराग पर जोर दिया और इस अभ्यास को करने के लिये गृहस्थी को छोड़ना जरूरी नहीं समझा। एक व्यक्ति गृहस्थ में रहते हुये सुरत-शब्द-योग का अभ्यास कर सकता है। राधास्वामी नाम के सुमिरन और गुरु स्वरूप के ध्यान पर बल दिया और फरमाया कि जब तक ध्यान और नाम का सुमिरन पूरी तरह पक्का नहीं होगा, अन्तर्मुख धुन को नहीं सुन सकता है। वक्त के संत सतगुरु की भक्ति पर जोर दिया। अपने सामयिक यानि वक्त गुरु को खोजना और वह जब मिल जायें तो उनकी भक्ति करने से ही अभ्यास भी बन सकता है और मुक्ति यानी उद्धार भी होगा।

जब शहर के मकान पर भीड़-भाड़ बहुत बढ़ने लगी तो स्वामीजी महाराज ने किसी एकान्त स्थान पर जाने का इरादा जाहिर किया। हजूर महाराज ने उनको सुखपाल पर बैठाकर शहर के चारों कोनों में घुमाया। तब स्वामीजी महाराज ने आगरा के उत्तर में निर्जन स्थान जहाँ सरकन्डों का जंगल और रेत ही रेत थी, उसी को पसंद किया। यहाँ पर एक टीला भी था जिसको हजूर महाराज ने सन् १८७५ ई. में खरीद कर स्वामीजी महाराज को भेंट किया और एक बाग लगाया जो राधास्वामी बाग के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

स्वामीजी महाराज कुछ दिन राधास्वामी बाग में रहे। उस टीले पर जहाँ समाध बनी हुई है वहाँ पर खूब सतसंग किया। एक कोने में ऊंचे पत्थर पर बैठकर महाराज दातौन किया करते थे और मुंह साफ करते थे। अपने जाने से पहले कुछ साधुओं को बता दिया था कि यहाँ गुरुद्वारा बनेगा और वहीं पर समाध निर्मित हुई है। राधास्वामी बाग में हजूर महाराज ने कुछ मकान बनवाये। उसमें से अत्यधिक महिमा उस कमरे की है जिसमें स्वामीजी महाराज भजन किया करते थे और भोग लगाते थे। वह आजकल भजन-घर के नाम से प्रसिद्ध है। हजूर महाराज प्रायः रोज ग्रास लेते थे। कभी-कभी दफ्तर के अत्याधिक काम से पहुंचने में देर हो जाती थी तो उनका ग्रास भजन-घर के ऊपर जो आला बना हुआ है उसमें रख दिया जाता था।

राधास्वामी बाग में जो कुआं है उसमें स्वामीजी महाराज ने मुखामृत और चरनामृत डाला है जो अत्यन्त पवित्र है। हजूर महाराज ने प्रेम पत्र में इसकी महिमा का वर्णन किया है और सभी सतसंगियों को आदेश दिए हैं कि वहाँ के जल को प्रसादी के रूप में ग्रहण किया करें।

स्वामी बाग में स्वामीजी महाराज ३ वर्ष रहे, लेकिन पन्नी गली इस बीच में आते रहते थे। चोला त्यागने की मौज पन्नी गली में ही फरमाई। पन्नी गली का गुरुद्वारा हर प्रकार से महत्वपूर्ण है, क्योंकि वहीं स्वामीजी महाराज का जन्म हुआ, अभ्यास वहीं किया, उपदेश दिया, वहीं बचन फरमाये और सतसंग किया। वहीं 'सारबचन बार्तिक' और 'सारबचन छंद बंद' की रचना की। उसी गुरुद्वारे में ही स्वामीजी महाराज और हजूर महाराज की पहली मुलाकात हुई और उसी जगह में हजूर महाराज ने बेमिसाल भक्ति की। हजूर महाराज स्वामीजी महाराज के दरबार में अठारह-अठारह घंटे सेवा करते थे। रात को १२ बजे आते थे और सुबह ५:३० बजे जाते थे। दर्शन की तड़प बेहद रहती थी।

स्वामी बाग में करीब ४० साधु रहते थे उनके खाने-पीने का पूरा इंतजाम हजूर महाराज करते थे। यह लोग अपने भजन और सतसंग में लगे रहते थे। इनमें से एक साधू हंसदास को जंगल और एकान्त में रहने का बहुत शौक था। एक दिन वह अचानक यमुना की तरफ जा निकले जहाँ राधाबाग का कुआं है। उन्होंने इरादा अपना वहाँ आसन जमाने (स्थाई रूप से ठहरने) का किया। हंसदास जी स्वामीजी महाराज को एक दिन हवा खिलाने के लिये वहाँ ले गये और कुआँ दिखलाया तथा कहा कि मेरी इच्छा यहाँ रहने की है। यह कुआँ टूटा-फूटा और मलबे से भरा हुआ था। हंसदास जी ने अर्ज की कि अगर मौज हो जाय तो इसमें पानी निकल सकता है। यह सुनकर स्वामीजी महाराज खामोश हो गये। आठ-दस महीने बाद स्वामीजी महाराज ने हंसदास जी को बुलाकर पूछा कि क्या तुमने राधाबाग में कुछ किया? तब उन्होंने कहा कि महाराज मुझे नहीं मालूम कि राधाबाग कहाँ है। फरमाया कि उस जगह पर जहाँ तुमने हमको कुआँ दिखलाया था वहीं राधाबाग बनेगा और तुम वहीं जाकर अपना आसन डाल दो। दो-चार रोज में उस कुएं में ६-७ फुट पानी हो गया। इसी बीच में अकाल पड़ गया। हंसदास जी उसी कुएं से दो-दो सौ तीन-तीन सौ जानवरों को हर रोज पानी पिलाते रहे। बाद में उसी स्थान पर बाग लगाने की व्यवस्था हुई जो अब राधाबाग कहलाता है।

स्वामीजी महाराज और उनके सतसंग से अनेक चमत्कारिक घटनायें सम्बन्धित हैं। अपनी आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा सूखे की स्थिति में भी मूसलाधार वर्षा कर देते थे। बंजर भूमि को उपजाऊ भूमि में परिवर्तित कर देते थे। उनके सतसंग में जो सतसंगी आते थे, वह अपने व्यवसाय और संसारी कार्यों को भूल बैठते थे। उनके सतसंग में कुछ ब्रिटिश सरकार के एजेंट भी आ बैठते थे। वह रूप बदल कर बैठते थे। लेकिन स्वामीजी महाराज उनको एक दृष्टि से पहचान लेते थे।

एक घटना इस प्रकार है कि स्वामीजी महाराज की परशादी खाने के प्रश्न पर साधू कमल दास ब्राह्मण और भजन दास का झगड़ा घट वालों से हो गया। हुआ यूं कि यह साधू स्वामीजी महाराज के इस्तेमाल के लिये आम कुएं से पानी लाते थे। घट वालों ने कुएं से पानी खींचने के लिये बिल्कुल मना कर दिया और झगड़े पर आमादा हो गये। कमल दास साधू ने लाचार होकर थप्पड़ मार दिया। दोनों साधू पानी ठेले में भरकर ले आये और यह हाल सब स्वामीजी महाराज से बयान किया। स्वामीजी महाराज ने फरमाया कि तुम लोग साधू बनने के लिये आये हो या अहंकार और क्रोध को काम में लाकर गरीबों को दुख देने के वास्ते आये हो? दोनों साधुओं ने माफी मांगी और स्वामीजी महाराज के चरनों में मत्था टेका। तब महाराज ने फरमाया कि घटवालों से जाकर माफी मांगो और हमारी तरफ से इनाम भी दो। घटवाले बड़ी दीनता से आये और स्वामीजी महाराज के चरनों में अपने कसूरों की माफी मांगी। महाराज ने उनका कसूर माफ कर दिया।

एक साधु आनन्द गिरि स्वामीजी महाराज की महिमा और तारीफ सुनकर बेमतलब ईर्ष्या करने लग गया था। उसने उस वक्त के शहर कोतवाल को भड़का दिया। शहर कोतवाल ने एक सिपाही का पहरा स्वामीजी महाराज के घर पर इस उद्देश्य से बैठा दिया कि कोई व्यक्ति सतसंग में न आने पावे। जिन सतसंगी और सतसंगिनों का आधार दर्शन, चरनामृत और परशादी था उन्हें बेहद तकलीफ हुई। तब स्वामीजी महाराज ने ऐसी मौज फरमाई कि वह शहर कोतवाल किसी मुकद्दमे की परेशानी में फंस गया और साधु आनन्द गिरि से ऐसी बेजा हरकत बन आई कि शरमिंदगी की वजह से सदा के लिये आगरा छोड़कर चला गया।

तुलसी साहब के साधुओं में उच्चकोटि के एक साधु श्री गिरधारी दास थे। वह स्वामीजी महाराज से बहुत प्रीति रखते थे और उनको बहुत बड़ा महात्मा मानते थे और उनके साथ बहुत अदब और ताजीम से पेश आते थे। कई बरस तक स्वामीजी महाराज ने उनको अपने पास वाले मकान में ठहराया और खातिरदारी की। गिरधारी दास एक दफा लखनऊ गये हुये थे, वहाँ वह बीमार हो गये। स्वामीजी महाराज को सूचना हुई तब महाराज खुद चंद सेवकों के साथ लखनऊ तशरीफ ले गये। श्री गिरधारी दास ने बड़े अफसोस से कहा कि पता नहीं इस वक्त सुरत शब्द को क्यों नहीं पकड़ती है और शब्द भी गुम हो गया है। उसी वक्त स्वामीजी महाराज ने दया की और सुरत उनकी निश्चल हो गई तथा परम धाम को चली गई।

एक दिन स्वामीजी महाराज तीसरे पहर वास्ते हवाखोरी के लिये जंगल की तरफ गये। बहुत से साधु, सतसंगी, सतसंगिनें और हजूर महाराज साथ थे। वहाँ पर किसी ने अर्ज किया कि स्वामीजी महाराज को हाथी पर सवार होना

चाहिये। स्वामीजी महाराज ने फरमाया कि हम और सब सवारियाँ तो कर चुके हैं लेकिन हाथी पर नहीं चढ़े हैं। यह सब बात हो ही रही थी कि सामने की तरफ से एक हाथी आ गया। सतसंगियों ने कहा कि महाराज हाथी मौजूद है। राधास्वामी साहब थोड़ी देर के लिये हाथी पर सवार हुये फिर महाराज ने हाथीवान को इनाम देकर रवाना कर दिया।

स्वामीजी महाराज का जब आम सतसंग हुआ करता था तब पलटन के कुछ सिपाही जिनको स्वामीजी महाराज के चरनों में बहुत विरह और प्रेम पैदा हो गया था बराबर सतसंग में आते थे और कभी-कभी बिना पूछे अपने अफसर के चले आते थे। लेकिन उन लोगों की गैर हाजिरी कभी नहीं लिखी गई। हाजिरी लेने वाला उनका नाम लेना भूल जाया करता था।

स्वामीजी महाराज का सतसंग हिन्दू, ईसाई, मुसलमान सभी के लिये खुला रहता था। किसी को कोई रोक-टोक नहीं थी। अनेकों मुसलमानों और ईसाइयों ने स्वामीजी महाराज से उपदेश लिया।

स्वामीजी महाराज बहुत सूक्ष्म आहार लेते थे और बहुत कम विश्राम करते थे। रात दिन काम करने के कारण शरीर जर्जर हो गया था और निजधाम जाने की घोषणा कर दी थी लेकिन हजूर महाराज ने बहुत बिनती की तो २ वर्ष और रहना मंजूर किया लेकिन यह कह दिया कि आइन्दा ऐसी अर्ज न की जाए। शनिवार १५ जून सन् १८७८ ई. तदानुसार आषाढ़ बदी १ पड़वा सं. १९३५ को निजधाम जाने की मौज फरमाई और दोपहर को २:३० बजे अन्तर्ध्यान हुए। शब्द स्वरूप स्वामीजी महाराज हजूर महाराज में आ समाए और जो दो दीखते थे वे एक हो गए। दोनों उसी देश के बासी थे लेकिन हजूर महाराज जब तक गुरुमुख रूप थे तब तक एक पर्दा सा हायल (आड़) था। वह पर्दा हटा और वैसे का वैसा रूप ज्यों का त्यों हजूर महाराज में दीखने लगा।

परम पुरुष पूरन धनी स्वामीजी महाराज की समाध सन् १८७९ ई. में राधास्वामी बाग में हजूर महाराज ने निर्मित करवाई।

सन् १९०४ ई. में महाराज साहब ने इस समाध के स्थान पर एक भव्य लाल इमारत बनवाने का निर्णय लिया। पुरानी समाध की इमारत तोड़ी गई और समाध को ज्यों का त्यों हटाकर राधाबाग में स्थापित किया गया जिसमें राधा जी महाराज की रज भी रख दी गई और स्वामी बाग में एक अस्थाई समाध निर्मित कराई गई उसमें स्वामीजी महाराज की रज के साथ राधाजी महाराज की रज रख दी गई। समाध की इमारत के पूर्ण होने से पूर्व ही महाराज साहब गुप्त हो गये। महाराज साहब ने समाध निर्माण कार्य मेघनाद बनर्जी के सुपुर्द किया था।

महाराज साहब के गुप्त होने के कुछ दिनों बाद यह कार्य मेघनाद बनर्जी से छीन लिया गया। कुछ दिन यह कार्य बन्द पड़ा रहा इसके बाद सन् १९२३ ई. में लाल पत्थर की इमारत को तोड़कर संगमरमर की भव्य इमारत बनाने का निर्णय लिया गया। एक नये मॉडल के आधार पर तब से इस समाध की सभी मंजिलों का कार्य पूर्ण करने का प्रयास किया जा रहा है। लेकिन यह बात सराहनीय है कि इसमें पच्चीकारी और जुड़ाई का काम व संगमरमर को तराश कर फूल पत्ती तथा फलों का निर्माण बहुत भव्य और सुन्दर है। वैसे आजकल काम तेजी से चल रहा है। आर्थिक अभाव के अतिरिक्त अन्य बाधायें भी हैं। पिछले संतों ने यही कहा था कि यह समाध कई दफा टूटेगी और कई दफा बनेगी। राधास्वामी दयाल ही जाने कि यह कब बनेगी।

स्वामीजी महाराज का चिन्तन दर्शन

(अ) कुल मालिक की संकल्पना

स्वामीजी महाराज द्वारा उद्घोषित कुल मालिक निराकार, अकह, अपार, अनन्त तथा अनाम है। वह सर्वशक्तिमान, सर्वदर्शी तथा सर्वव्यापी है। उसके गुण मेहर, दया, प्रेम, प्रकाश, आनन्द तथा शान्ति हैं। वह महा निर्मल एवं महा चैतन्य तथा

मन और माया से बहुत परे है। साकार रूप में उनका नाम सतपुरुष राधास्वामी है, जो स्वयं परम तथा चरम सत्य रूप मालिक ने ही प्रकट किया है।

अपनी रचनाओं में स्वामीजी ने भक्त एवं कुल मालिक के सम्बन्धों की व्याख्या ऐसे प्रतीकों से की है, जो मध्यकालीन संतों एवं रहस्यवादियों द्वारा भी प्रायः प्रयुक्त की गईं। उन्होंने हिन्दू धर्म के ब्रह्म और उसके अवतार अथवा ईसाई धर्म के ईसा अथवा इस्लाम के अल्लाह के अस्तित्व को चुनौती नहीं दी। वह केवल यह निर्धारित करते हैं कि उनके उद्गम का लोक सत्तपुरुष राधास्वामी के लोक से निम्न खण्डों में है तथा मन और माया से पूर्णतः मुक्त नहीं है। अतः उनको कुल मालिक का रूप देना भ्रामक है। स्वामीजी महाराज के अनुसार राधास्वामी सर्वोच्च सत्ता तथा उन सभी का स्वामी एवं नियन्ता है। इस सत्य की अनुभूति संतों के अतिरिक्त कोई भी नहीं कर सका। केवल संतों को ही ऐसे निर्मल चैतन्य देश का पूर्ण ज्ञान है, जो माया की सीमा से परे है।

(ब) रचना की संकल्पना

स्वामीजी महाराज के अनुसार कुल मालिक सुन्न समाध की दशा में उन्मुन (खामोश) थे। उनकी मौज (दिव्य इच्छा) द्वारा अथवा आन्तरिक कम्पन के कारण एक झंकृत ध्वनिमय आध्यात्मिक धारा उनसे ही उठी और उससे विशद आध्यात्मिक खण्ड, निर्मल चैतन्य देश (संतों के चौथे लोक) की संरचना हुई। राधास्वामी पद से प्रारम्भ होकर, इस धारा ने पहले अगम लोक, फिर अलख लोक तथा अन्त में सतलोक रचा। उन्होंने रचना के इन खण्डों को निर्मल आत्म-तत्व, प्रकाशवान, आनन्द, प्रेम तथा शान्ति का आगार माना है। राधास्वामी पद, जो इन खण्डों में उच्चतम एवं श्रेष्ठतम है, वह इतना अपार और अथाह है कि उसे 'खण्ड' अथवा 'स्थान' ही नहीं कह सकते। यह चौथा लोक अविनाशी है क्योंकि इसमें महाचैतन्य आत्म-तत्व ही सर्वत्र व्याप्त है।

स्वामीजी ने सतलोक से नीचे, हिन्दू धर्म की रचना-विषयक अवधारणा के अनुरूप तीन लोकों की सृष्टि में विश्वास किया है। उनके अनुसार सतपुरुष के विस्तार से एक धारा निकली, जो काल कहलाई। उसे सतपुरुष ने अनुग्रहपूर्वक 'आद्या' नामक आत्मिक तत्व प्रदान किया जिसकी आवश्यकता उसे आगे रचना के लिए थी। आद्या अर्थात् प्रकट आत्मिक तत्व और अक्षर पुरुष अर्थात् गुप्त आत्मिक तत्व (जिसके माध्यम से शक्ति निष्कासित हुई) के साथ काल ने ब्रह्माण्ड की रचना की, जो दूसरा महाखण्ड है। इसके प्रमुख लोक सुन्न, त्रिकुटी और सहसदल कंवल हैं। आत्मिक तत्वों की ब्रह्माण्ड में प्रधानता रही किन्तु माया (प्रकृति) भी सूक्ष्म रूप से सम्मिलित रही। ब्रह्माण्ड में निज मन का बास है तथा पांच तत्व और तीन गुण यहीं से प्रकटे। काल और माया फिर निरंजन एवं ज्योति कहलाए। इसके नीचे की रचना को अण्ड देश कहते हैं और उसके तीन भाग ब्रह्मा, विष्णु और महेश के लोक कहलाते हैं। अन्त में, काल एवं माया ने पिण्ड देश की रचना की, जो रचना का तीसरा विशाल खण्ड है, जिसमें शरीर से सम्बन्धित छह चक्र और नौ द्वारे हैं। स्वामीजी महाराज कहते हैं कि सुरत (आत्म-तत्व), पिण्ड (भौतिक जगत तथा शरीर) में बन्दी है और काल के शोषण एवं पीड़न की शिकार है।

(स) सुरत या आत्म तत्व की संकल्पना

स्वामीजी ने आत्म तत्व को 'सुरत' का नाम दिया है। 'सुरत' कुल मालिक की अत्यन्त सूक्ष्म अंश है, अतः स्वभावतः उसमें समस्त गुण मालिक के हैं। सुरत इसलिए रचना के सर्वोच्च लोक से अवतरित हुई। विभिन्न रचना खण्डों में भ्रमण करती हुई वह नीचे तीसरे तिल पर, जो सहसदल कंवल से तनिक निम्न स्थान है, शरीर में ठहर गई। देह में समाने के पश्चात् वह पांच तत्वों, तीन गुण, मन, माया तथा दस इन्द्रियों में फंस गई। वह अन्य बंधनों जैसे सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, सम्मान, यश, परिवार एवं सम्बन्धियों में भी बंध गई। ऐसी स्थिति में वह जीव कहलाई। जीव को जीवन-मरण एवं पुनर्जन्म की परिधि में पड़कर चौरासी लक्ष योनियां, तृष्णा और कर्म-भार के अनुसार, धारण करनी पड़ती हैं। सुरत इस प्रकार इन बन्धनों से त्राण पाने में असमर्थ हो गई है। सुख और दुख की भावना में अपरिमित वृद्धि होती है और सुरत अपने निज धाम (जहाँ से आई है) को लौटना भूल जाती है तथा अपने मूल स्वभाव और गुणों को खो देती है।

(द) मोक्ष की संकल्पना

स्वामीजी महाराज के अनुसार सुरत अपने निज धाम को पुनः लौट सकती है, यदि वह सभी सांसारिक बंधनों से निवृत्ति (छुटकारा) प्राप्त कर ले। वह कहते हैं निज धाम को लौटना ही सच्चा मोक्ष है। सुरत तभी लौकिक सुख एवं दुख की यंत्रणा तथा चौरासी लक्ष के चक्र से मुक्त हो सकेगी। सुरत इस प्रकार, काल की परिधि को सहज पार कर आत्मिक आनन्द एवं शक्ति का अनुभव करेगी। मोक्ष सुरत का अंतिम लक्ष्य है और वह उस ओर 'शब्द' के आकर्षण एवं सम्बन्ध से बढ़ सकती है। शब्द ही केवल सुरत का पथ-प्रदर्शक है, जो रचना के ऊंचे खण्ड और लोक में सुरत के सूक्ष्म गमन के समय तथा अन्त में निज धाम पहुंचने में सहायक होगा।

(य) शब्द की संकल्पना

स्वामीजी कहते हैं, शब्द अथवा शाश्वत ध्वनि तरंग ही कुल मालिक का प्रथम प्रत्यक्षीकरण है। यह परम शक्ति है तथा रचना का मूल स्रोत है। ध्वनि तरंग के गुंजन को ही कहते हैं। यह पवित्र नाम जीवों के अन्तर में प्रतिध्वनित होता रहता है।

शब्द और सुरत दोनों के लक्षण एवं गुण समान हैं तथा सुरत का शब्द के प्रति स्वतः आकर्षण है। स्वामीजी के अनुसार, निर्धारित अभ्यास के द्वारा सुरत, शब्द से संलग्न होकर, अनेकों उच्च खण्डों को पार करती हुई एक दिन अपने निज धाम पहुंच सकती है। शब्द की रहस्यमयी कुंजी केवल सामयिक संत सतगुरु के पास है।

(र) संत सतगुरू की संकल्पना

इस दृढ़ भावना के साथ कि संत सतगुरू इस संसार में कुल मालिक के अवतार हैं, स्वामीजी महाराज संत परम्परा का निर्वाह करते हैं तथा हिन्दू धर्म की प्राचीन आस्था को पुनर्जीवित करते हैं। वह कहते हैं कि संत सतगुरू ने यद्यपि देह धारण की है, किन्तु उन्हें 'मानव' समझना भूल है। वह यथार्थ ही आध्यात्मिक तरंग का मानवीय रूप हैं, जो जग में दुखी मानवता का उद्धार करने के उद्देश्य से आए हैं। जो जीव जिज्ञासु और सत्यान्वेषी हैं और काल, माया के बन्धन से दूर जाने के इच्छुक हैं, उनको संत सतगुरु दया-मेहर से आध्यात्मिक उन्नति का अवसर देते हैं तथा स्थायी सुख और शान्ति बख्श देते हैं।

दो अनिवार्यतायें

स्वामीजी के धार्मिक चिन्तन के अध्ययन से स्पष्ट है कि उन्होंने दो अनिवार्यताएं विशेष रूप से बताईं - गुरू भक्ति तथा सुरत-शब्द-योग।

(अ) गुरु भक्ति

स्वामीजी के अनुसार कुल मालिक से आविर्भूत होने वाली आध्यात्मिक धारा इस संसार में मानव रूप में प्रकट हुई है तथा यह तब तक सक्रिय होती रहेगी, जब तक सभी जीवों का उद्धार नहीं होगा। आध्यात्मिक धारा के मानवीयकरण की निरन्तर प्रक्रिया के कारण सामयिक सतगुरू का महत्व और स्थान इस मत में असाधारण होना आवश्यक है। इसीलिए स्वामीजी जीवों को आदेश देते हैं कि वक्त का सतगुरु ढूँढो और जब वह सौभाग्य से मिल जाएं तो तन, मन और धन से उनकी सच्ची सेवा करो। वह पुनः कहते हैं कि ऐसे लोग, जो मोक्ष के इच्छुक हैं, सतगुरू के चरणों में एकनिष्ठ भक्ति और प्रेम धारण करें। केवल सतगुरू ही जीवों के अन्तर में पवित्र नाम उद्भासित कर सकते हैं जिससे वे चौरासी चक्र से मुक्त हो जाएं।

स्वामीजी की रचनाएं ऐसे निर्देशों से भरी हैं कि जीवों को नियमित तथा आवश्यक रूप से 'वक्त के सतगुरू' की खोज करने के लिए क्या साधन अपनाने चाहियें। उन्होंने भक्त के लिए सतसंग में सम्मिलित होने के आदर्श गुरू भक्ति की विधि भी वर्णित की है। वह कहते हैं कि सतसंग से भक्त के हृदय में प्रेम और भक्ति उपजेगी तथा मन निर्मल हो जाएगा। वह सतसंग को, संत सतगुरू अथवा साध गुरू के संग और कुल मालिक की वन्दना के लिए एकत्रित संगत के संदर्भ में परिभाषित करते हैं। सतसंग में भक्त-जन तथा अन्य सभी संत सतगुरू के प्रवचन को सुनते हैं, जिससे उन्हें 'वक्त गुरू' की परख-पहचान हो सकती है जिनसे वह अपनी समस्या का समाधान तथा भ्रम का निवारण कर सकते हैं तथा लौकिक एवं अलौकिक आचरण के लिए उचित निर्देश भी प्राप्त कर सकते हैं। नियमित सतसंग से प्रेमीभक्त को सफल आन्तरिक अभ्यास करने का लाभ प्राप्त होगा।

(ब) शब्द भक्ति - सुरत-शब्द-योग

सुरत-शब्द-योग स्वामीजी महाराज के बताए हुए आध्यात्मिक अभ्यास को कहते हैं। इसका शब्दार्थ सुरत (आत्म-तत्व) का शब्द (ध्वनि-तरंग की प्रतिध्वनि) से मिलन है। स्वामीजी के अनुसार गुरू-भक्ति से शब्द-भक्ति की प्रेरणा प्राप्त होगी। स्वामीजी ने विश्व के समक्ष रचना के विभिन्न भू-खण्डों में प्रतिध्वनित गुंजन अर्थात् शब्द का रहस्य खोल दिया तथा उच्चतम रचना के सभी लोकों के धुन, धाम तथा धनी का वर्णन किया। उन्होंने सशक्त स्वर में कहा कि जो भी राधास्वामी मत की दीक्षा लेकर आदर्श गुरू भक्ति का निर्वाह करता है, सुरत-शब्द-योग का अभ्यास पूर्णता और सरलता के साथ कर सकेगा। यह आन्तरिक अभ्यास सभी कर सकते हैं और इसके लिए गृहस्थ जीवन तथा व्यावसायिक दायित्वों को परित्यागना आवश्यक नहीं। योगाभ्यास के सभी प्रचलित स्वरूपों में केवल सुरत-शब्द-योग का अभ्यास ही सरलतम एवं श्रेष्ठतम है।

धार्मिक प्रचलनों पर उनके विचार

(अ) नास्तिकवाद तथा धार्मिक कुरीतियाँ

स्वामीजी ने धार्मिक उपदेशों के प्रति जीवों की उदासीनता के लिए खेद प्रकट किया है और अपनी रचनाओं में संसार और उसके भोग-पदार्थों की नश्वरता के प्रति चेतावनी भी दी है। वह ऐसे लोगों का खण्डन करते हैं, जो नास्तिक हैं, कुल मालिक के अस्तित्व को नहीं मानते तथा सर्वव्यापी सत्य को अनदेखा करते हैं। ऐसे मनुष्यों की वह भर्त्सना करते हैं, जो हिन्दू धर्म अथवा इस्लाम के अनुयायी होने का दम्भ करते हैं किन्तु यथार्थतः अपने धर्म के उपदेश सही अर्थों में नहीं मानते। हिन्दू धर्म की प्रचलित कुरीतियों की ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ तथा उन्होंने मानव-निर्मित मूर्तियों, नदियों, वृक्षों और पशुओं की पूजा करने की स्पष्ट आलोचना की। बाह्याडम्बरों तथा कर्मकाण्ड के विरुद्ध भी उन्होंने तर्क प्रस्तुत किए। इनके द्वारा मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकती - यह निर्भीक घोषणा भी उन्होंने की।

(ब) मूर्ति-पूजा

मूर्ति-पूजा के संदर्भ में उन्होंने तर्क दिया कि जड़ पदार्थों की पूजा किसी मूल्य पर भी आध्यात्मिक उत्थान में सहायक नहीं होगी। यह मात्र भ्रम है। स्वामीजी के अनुसार मानव अपनी सर्वोत्तम भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक योग्यता एवं प्रतिभा के कारण निर्जीव पदार्थों से - जो पत्थर या कांसे में उत्कीर्ण हैं और मानव द्वारा चित्रांकित हैं - कहीं अधिक श्रेष्ठ है। खेदपूर्ण भावना से वह कहते हैं कि ऐसे भक्त जनों की आध्यात्मिक शक्ति व्यापक अज्ञान द्वारा क्षय होती है क्योंकि वह मनुष्यों द्वारा पत्थर पर तराशी मूर्तियों की पूजा करते हैं। स्वामीजी की तुलना इस विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती से की जा सकती है, जो भारतीय पुनर्जागरण की एक महान विभूति तथा आर्य समाज के संस्थापक थे। दयानन्द जी कहते हैं कि मूर्ति-पूजा पाखण्ड है तथा ये वेदों द्वारा अमान्य है। उनके विचार में अनन्त मालिक तथा निराकार मालिक को पत्थर, धातु, लकड़ी तथा अन्य जड़ पदार्थों में सीमित करना अपमानजनक है। स्वामीजी महाराज का दृष्टिकोण दयानन्द सरस्वती जी से

भिन्न है। उनके अनुसार त्रुटि मूर्ति में नहीं, क्योंकि मूलतः वह केवल आन्तरिक ध्यान का साधन मात्र थी। मानव मन सदैव चंचल है तथा संसार के अनेकों क्रियाकलापों में व्यस्त रहता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी मन को स्थूल से सूक्ष्म अथवा जड़ से चेतन की ओर ले जाने का आकर्षण होना तर्क संगत है। वह कहते हैं कि प्रारम्भिक समय में मूर्ति-पूजा का यही संदर्भ था और वह इच्छित लक्ष्य प्राप्ति के लिये साधन मात्र थी। कालांतर में यह लक्ष्य लुप्त हो गया और मूर्ति-पूजा स्वयं में साध्य बन गई जिससे मानव अंधकार-ग्रस्त हो गया। मानव-स्वभाव का यथार्थवादी पक्ष प्रस्तुत करते हुए स्वामीजी ने निर्जीव पदार्थों की पूजा को सजीव मानव की पूजा में रूपान्तरित कर वक्त गुरू की पूजा का समर्थन किया, जो शब्द के विज्ञान और तकनीक में दक्ष हैं और आन्तरिक अभ्यास में पारंगत हैं।

(स) तीर्थ एवं व्रत

स्वामीजी ने तीर्थ एवं व्रत की भी आलोचना की है, जो भागवत धर्म के अनुसार हिन्दू जीवन का अंग बन चुके हैं। वह तीर्थों को निरर्थक बाह्याडम्बर मानते हैं जिससे आध्यात्मिक लाभ की अपेक्षा हानि होती है। संतों और साधुओं के पवित्र निवास-स्थान कभी आध्यात्मिक उपलब्धियों के केन्द्र रहे थे। परन्तु इस संसार से उनके गमन करने के पश्चात् उनकी पवित्रता और अलौकिक जीवन का प्रभाव पूर्णतः समाप्त हो गया। उन आदर्शों के विपरीत आज ये स्थान रंगारंग बाह्य क्रियाकलापों का केन्द्र या मेला-स्थान, पुजारियों एवं पुरोहितों की स्वार्थ-सिद्धि के लक्ष्य बन गए हैं।

वर्तमान व्रत-प्रथा को अनावश्यक बताते हुए स्वामीजी महाराज सशक्त ढंग से कहते हैं कि अतीत में व्रत का लक्ष्य मन का शुद्धिकरण एवं इन्द्रीय-निग्रह था, किन्तु यह कालान्तर में अर्थहीन हो गया और व्रत के दिन स्वादिष्ट एवं गरिष्ठ पकवान बनाकर तथा उनका उपभोग कर व्रत-महात्म्य समाप्तप्रायः हो गया।

(द) वेदों के प्रति दृष्टिकोण

ब्रह्मो समाज के प्रवर्त्तकों के विपरीत स्वामीजी महाराज ने दिव्य ज्ञान के आगम रूप में वेदों के अस्तित्व को नहीं अस्वीकारा। किन्तु उनके विचार में वेदों में समग्र अथवा सम्पूर्ण ज्ञान नहीं है। वह वेदों का उद्‌गम रचना के तीसरे लोक में मानते हैं। उसके रचयिताओं ने चौथे लोक, निर्मल चैतन्य देश, का ज्ञान नहीं पाया। जब वेद सीमित ज्ञान की अभिव्यक्ति हैं तो उन्हें पूर्ण सत्य नहीं माना जा सकता। वेदों के दोषों का ज्ञान केवल संतों को ही हो सका। कुल मालिक का सच्चा रहस्य वेदों में उद्‌भासित नहीं हो पाया। यह भी विचारणीय है कि वेदों के ज्ञान को भी बिना वक्त के संत सतगुरु की सहायता के नहीं प्राप्त किया जा सकता है तथा स्वामीजी महाराज के अनुसार इस महान सत्य को पूर्णतः विस्मृत कर दिया गया है।

(य) संत परम्परा

स्वामीजी महाराज ने पूर्ववर्ती संत परम्परा के ऐसे अनुयायिओं को भी नहीं मुक्त किया, जिन्होंने अन्तरमुख अभ्यास का परित्याग कर यह विश्वास प्राप्त कर लिया था कि मोक्ष-प्राप्ति ग्रंथ-पूजा अथवा पूर्ववर्ती गुरु की पूजा से सम्भव है। वह बार-बार चेतावनी देते हैं कि सभी बहिर्मुख पूजा का बहिष्कार किया जाए और स्मरण दिलाते हैं कि ग्रंथ में वक्त गुरु धारण करने का निश्चित आदेश दिया गया है, जिसके निर्देशन में ही मोक्ष सम्भव है। वह ऐसे मौलिक आदेशों के अनुपालन का आग्रह करते हैं, जो पूर्ववर्ती संत सुधारकों द्वारा प्रचारित किए गए थे।

(र) अन्य धार्मिक सम्प्रदाय

उन्होंने इस्लाम, जैन धर्म, ईसाई धर्म की भी आलोचना की तथा उनमें निहित दोष बताए। उदाहरणार्थ, स्वामीजी महाराज ने इस्लाम में प्रचलित रोजा, नमाज तथा अन्य बाह्याडम्बरों को अनावश्यक बताया। जैन धर्म के अत्यधिक आत्म-विग्रह में वह कोई सार्थकता नहीं पाते। वह ईसाई धर्म को भी पूर्ण नहीं मानते क्योंकि उसका भी उद्‌गम काल और माया के लोक से हुआ। वास्तव में, वह किसी भी ऐसे मत को स्वीकृति देने के लिए तत्पर न थे, जो वक्त के संत सतगुरु

की आवश्यकता पर बल न देता हो। उनका स्पष्ट कथन था कि सच्चा मोक्ष सुरत के राधास्वामी धाम में पहुंच पाने पर ही सम्भव होगा। यह सभी मत एवं सम्प्रदाय सुरत को काल तथा माया की हद से परे नहीं जाने देते वरन् उसमें ही उलझे रहते हैं, अतः उन्हें मुक्ति का पथ प्राप्त नहीं होता।

(ल) वाचक ज्ञान

अपनी रचनाओं में स्वामीजी ने वाचक-ज्ञानियों के विषय में उग्र स्वर में उल्लेख किया है। उन्होंने स्पष्ट किया कि वाचक-ज्ञानी सच्चे धर्म-ज्ञान के विषय में बहुत-कुछ जानने का दम्भ तो करते हैं, पर वास्तव में, वह बहुत कम या बिल्कुल नहीं जानते। वे कोरे वाचक हैं, जो धर्म-ग्रन्थों से पूरे के पूरे पृष्ठ रट लेते हैं और अज्ञानी जनता को मूर्ख बनाने के लिए वह उन्हें पाठ सदृश सुनाते हैं। धर्म उनके लिए स्वार्थ-सिद्धि का माध्यम मात्र है। वह जब स्वयं ही आत्म-सिद्धि नहीं प्राप्त कर सके, तो जीवों को मोक्ष मार्ग क्या दिखाएंगे। इसके विपरीत वे उन सभी को, जो उनका कहा मानेंगे, चौरासी के चक्र में फंसाएंगे। स्वामीजी उद्घोषित करते हैं कि प्रचलित ज्ञान न तो वेदों के अनुरूप है और न उपनिषदों के ही।

तत्कालीन सामाजिक प्रश्नों पर उनके विचार

सामाजिक क्षेत्र में स्वामीजी महाराज ने केवल दो कुरीतियों पर विचार प्रकट किए हैं, जो परस्पर सम्बन्धित हैं। प्रथम, जटिल जाति-प्रथा तथा दूसरी, पुरोहितों की प्रधानता। अपनी रचनाओं में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि चारों वर्णों ने अपने कर्त्तव्यों को भुला दिया है, विशेषकर ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने, जो आज के समाज में अन्य वर्णों पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। वे अपने सामाजिक स्तर एवं स्थिति के विषय में पूर्वाग्रही हैं किन्तु अपने गुणों के लिए बिल्कुल नहीं। व्यावहारिक स्तर पर वे लोग स्वार्थ-सिद्धि के लिए निम्न से निम्न कार्य करने में नहीं हिचकते। वह कहते हैं कि हिन्दू धर्म में प्रचलित सभी कुरीतियों के लिए विशेषकर पुरोहित वर्ग ही उत्तरदायी है। उन्होंने सन्यास समुदाय की खरी आलोचना करते हुए कहा कि संसार त्याग कर सन्यासी का वेश धारण करने वाले व्यक्ति ही जब अपनी इच्छाओं और तृष्णाओं को दमित नहीं कर पाते, तो वह दूसरों को क्या उपदेश देंगे। ये लोग सामान्य जनों को केवल पथ-भ्रष्ट ही करते हैं।

लालाजी महाराज ने फरमाया है -

"हजूर स्वामीजी महाराज व हजूर महाराज साहब दोनों राधास्वामी धाम से तशरीफ लाए और एक जान दो कालिब में वास्ते उद्धार जीवों के ऐसे जमाने नाजुक में कि जिस वक्त जीवों की हालत निहायत कमजोरी और निर्बलता की थी और भेद मालिक से बिल्कुल बेखबरी थी, प्रकट होकर कारवाई जीवों के उद्धार की शुरू करवाई -

जग से न्यारे, प्यारे-प्यारे, हजूर पुर नूर, करीम-रहीम-खतापोश, दीनानाथ, कारज-कर्ता, प्रेम-निधान, परमपिता, परम पुरुष पूरन धनी हजूर राधास्वामी साहेब स्वामीजी महाराज के पवित्र चरन कंवलों में कोटि-कोटि प्रणाम। भारी मौज, असीमित दया और फैज का दरिया बहाकर हम गरीबों को, बेसहारा जीवों को नूरानी प्रेम की झलक दिखाकर खींचा है, अचरजी लीला दिखाई है, शब्द का अमृत छक-छक कर पिलाया है, गुनाहों को बख्शा है। इस भारी रहमत का शुकराना अदा हम तुच्छ जीव क्या करें, कैसे करें। गुजारिश यही है -

जहाँ भी जी चाहे ले जाकर के रख दो ।